॥ श्री ॥

वीर प्रभु के नाम खुली चिट्ठी

व

वीर प्रभु का संदेश

लेखकः—

लोकमणि जैन, गोटेगांव

प्रकाशक —

तारण-तरण समाज, गंज-बासोदा।

सम्वत् १९९७

प्रस्तावना।

माननीय मूर्तिपूजक जैन बन्धुओं ! आपको जानना चाहिये कि वयोवृद्ध प० लोकमणिजी गोटेगाँव (छिंदवाड़ा) निवासी सज्जन ने जो अपने हृदय उद्गार परवार-बन्धु कार्तिक सं० १९८९ में प्रगट किये थे जिन पर समाज ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपनी लोकरूढ़ि के बन्धनों में बँधे रहे।

कोई भी अनुभवी विद्वान जो कुछ अनुभवपूर्ण प्रयास करता है। उसका मन्तव्य उस प्रयास में एकमात्र यही रहता है कि लोग मिथ्या रूढ़ि से मुक्त होकर सन्मार्ग में लगकर अपने धर्म तथा गृही जीवन को पवित्र बनावें।

अतः इस उद्देश को लेकर फिर से ..वर्ष बाद भी हम उक्त पंडितजी की सद्भावनाएँ आपके समक्ष उपस्थित करते हैं और आशा करते हैं कि आप सहर्ष से अपनाकर अपनी आत्मा को अहित से बचाकर कल्याण मार्ग में लगावेंगे अर्थात जड़वाद से मुक्त होकर अध्यात्म मार्ग का अनुसरण करेंगे।

शुभेच्छा का इच्छुक—

पंडित मुरलीधर नायक

कुंडा (छिंदवाड़ा)

श्री वीर प्रभु की सेवा में खुली चिट्ठी ।

परम पूज्य श्री वीर के चरणों में कोटिशः प्रणाम—

प्रभो! आप मोक्ष में हैं-पत्र कैसे पहुँचेगा? इसकी चिन्ता नहीं यह कागज न पहुँच सके; पर मेरे अन्तःकरण के उद्‌गार आपके पास अवश्य पहुँचेंगे। वीर प्रभु! आप आज से ढाई हजार वर्ष पहले यहीं विराजमान थे। आप धर्मावतार-धर्म की मूर्ति स्वरूप थे। आपने जिस धर्म का लोगों को सदुपदेश दिया, वह बहुत ही दिव्य और सच्चा है। उसके स्वतंत्र विचार, दार्शनिकों को असीम आनन्द पहुँचाने वाले हैं। आपने समवशरण में बैठकर; समस्त प्राणियों को एकता का पाठ पढ़ाया था। अपनी सभा में देव-दानव-मनुष्य पशु और पक्षियों तक को समान स्थान दान दिया था। जो जिस भाषा का ज्ञाता हो, आपने उसी भाषा में उसे धर्मामृत पान कराने का प्रबन्ध कर दिया था। इसका फल वही हुआ, जो एक सच्चे वीरात्मा के दिव्य विचारों से होना संभव था। आपके प्रत्येक उपदेश को-आपके प्रत्येक शब्द को लोगों ने धर्म नाम से पुकारा, और उससे अपने को अलंकृत करने में गौरव प्रगट किया। आपके दिव्य विचार पुराण रूप में-लोगों के साम्हने आये, लोगों ने आपके विचारों पर मनन किया; प्रयोग किया; पाप रोगों पर परीक्षा की;

विचार पापाहारी सिद्ध हुए। लोग सत्य की खोज करते आये; वह आपके विचारों के समर्थक हो गये। उन्हें सत्य नग्न रूप में दृष्टि गत हुआ। आपके दिव्य विचारों ने विस्तार पाया। सबेरे की छाया की नाईं एकदम प्रसार हुआ, और वह इतना अधिक हुआ, कि उनका नाम सार्व-धर्म हो गया। सबने आपके विचार मुक्ति के दाता माने, सारी दुनियाँ में उन विचारों का नाम जैन-धर्म कहलाया और इसीलिये आप "जिन" नाम से प्रसिद्ध हुए। जिन पापों को कोई न जीत सका, उसे आपने जीता, इसलिये वीर-जिन-महावीर आदि नामों से प्रख्यात हुए।

आप थोड़े समय बाद ही मोक्ष पधार गये। आपके धर्म ने थोड़ा विस्तार पाया, पर समय ने उस अमूल्य धर्म को वैश्य जाति के हवाले कर दिया। यह जाति व्यापारी है, इसलिये इसने जैन धर्म की अमूल्य चीजें सब बेच खाईं। जैन धर्म का दिवाला निकाल दिया, दूसरे धर्म वाले बढ़े, उन्होंने वृद्धि पाई, पर जैन धर्म धारी घटे, बुरी तरह घटे, दूसरों ने थोड़े से प्रकाश में बहुत काम कर लिया। यहाँ वैश्य जाति के लालों ने बड़े भारी प्रकाश में भी अंधकार देखा। आपके सिद्धान्तों का बुरी तरह से खून किया। आपके दिव्य विचारों का गला घोंटा, मारते मारते उन पवित्र विचारों का कचूमर निकाल दिया।

धर्म के मर्म को इस जाति ने न जाना. ऊपरी बातों में ही इसने धर्म समझा और ऊपरी ही क्रियाओं द्वारा अपने को धार्मिक समझा, पठन-पाठन बंद हो गया। आपके धर्मवृक्ष को विषैले जन्तुओं ने (भट्टारक आदि पाखंडियों ने) विषमय बना दिया, अमृत में विष मिला दिया; धर्म की आड़ मे समस्त पापों का शृंगार किया गया, सब ही पापों को धर्म का जामा पहनाया गया; सब ही स्वार्थ वासनाओं को धर्म की साड़ी पहनाई गई; गुरुतर से गुरुतर पाप भी धर्म रूप मे लोगों के साम्हने लाये गये. पाप को प्रकारान्तर से करने पर धर्म संज्ञा दी जाने लगी। इसका फल यह हुआ, कि इस समय जितने पाप हो रहे हैं, वे सब धर्म का जामा पहने हुए है। पापो को पाप नाम से पुकारने का साहस नही होता।

आपके धर्म की प्रभावना के लिये, जैनियों ने बिना समझे ही खूब रुपया खर्च किया। खूब मंदिर बनवाये. कारीगर लगा लगाकर प्रत्येक पत्थर मे से अर्हन्तों की मूर्तियाँ निकलवाई। हमें तभी मालूम हुआ, कि जैनियों के परमात्मा भी सर्वगत है, सारी चीजो मे है, समस्त पत्थरो मे धातुओं मे वास करते है, सिर्फ खोजक चाहिये। आप भी खूब पुसे। कहीं पत्थरों मे कही सोने चाँदी मे, कही चाँवलों इत्यादि मे। पर जैन जाति के वृद्ध वीरों ने आपका खोज भी बड़ी बुद्धिमानी से किया। हथौड़ा और छैनी से आपकी मूर्ति खोज निकाली। हथौड़ा

छैनी की पैनी धार आप भी सहन न कर सके, और चट से पत्थर में से निकल पड़े, और पट से मन्दिरों मे बैठकर जैनियों की पूजायें सुनने लगे, खूब मजीरों की प्यारी आवाजें सुनकर तल्लीन होने लगे। पुजारियों की हृदय हीन पूजायें आपको खूब रूचीं, पुजारियों का मन्दिरों में पाप करना, स्त्रियों का शृंगार तथा मंदिरों की सजावट आप देखते रहें? आपने "हाँ" "न" कुछ नहीं कहा। अब देखिये, आपको ये विचारे मंत्रों से कीलित कर, वेदी पर बिठाये हुए है, और कैसे कैसे काम धर्म के नाम पर आपके साम्हने कर रहे हैं? आपके अमृतमय उपदेशों में इन लोगों ने विष मिला दिया है। वह हमे मृत प्राय बना रहा है, आप तब भी मौन हैं।

आपने अपने बहुमूल्य उपदेशों मे साम्यभाव की प्रधानता बतलाई, ऊँच-नीच का भेद, आपने अपने धर्म में होने नहीं दिया। पर आपके मोक्ष जाने के बाद, शास्त्रों की रचना हुई, शास्त्रकारों ने "आपके ही वचनों का संग्रह किया है, अपने मन से एक शब्द भी नहीं जोड़ा", ऐसी उत्थानिका प्रत्येक शास्त्रों मे लिखी गई है। जिन शास्त्रों मे कुछ शास्त्र इस समय दम्भी-झूठे-तथा पाप पोषक ठहराये गये है, उनमें भी आपके सिर सारा कलंक दिया गया है। आपके ही कथा को उन्होंने पुष्ट किया है, ऐसा वे ही कहते है, हम और आप मंदिरों

में रोज सुना करते हैं। आप मन्त्र से कीलित हैं, सो आप सब सुनते हैं, सहन करते हैं। हम आपके नाम की छाप पर मरते हैं। शंका करने से मिथ्यावादी ठहराए जाते हैं। जैनी होने का हक्क हमारा छीना जाता है। इसलिये हम भी पापों को पाप नहीं कह सकते।

एक बात बड़ी विलक्षण हुई कि, धर्म-शास्त्रों की रचना पुरुष जाति ने की-पुरुष ही शास्त्रों के कर्त्ता-धर्त्ता हुए, इसलिये उन्होंने पुरुषों को गले तक पाप कर लेने पर भी प्रायश्चित से शुद्ध कर लेने का अधिकार दिया, एक क्या हजारों स्त्रियों से रमण करने की आज्ञा दी। पुरुष खूब भोग करें, हजारों स्त्रियों से रमण करें, पर पाप नहीं! विचारी स्त्री, एक काना, कोढ़ी, लूला, गूंगा, नपुंसक, विनाबना पति भी पाकर जीवन व्यतीत करे, वह दूसरे की तरफ आँख उठाकर भी न देख सके, अगर देखले तो सिवाय नरक के उसे स्थान नहीं! जितना पाप, पुरुष ५ रुपया के लड्डुओं को पञ्च पेटी में झोककर नाश कर ले, उतना पाप स्त्री सर्वस्व अर्पण करने पर भी नाश न कर सके! विषमता!! घोर विषमता!!! कुछ तो धर्मशास्त्रों में घुटाला हुआ, कुछ समाज के मुखियों ने अपनी बुद्धि का पैंतरा दिखाया, अब आप ही देख लीजिये, आपके धर्मधारी साठ वर्ष की उमर में शादी कराते हैं या नहीं? विधवाएँ व्यभिचार में लीन हैं या नहीं? जाति के

कुआँरे घर घर व्यभिचार करते फिरते हैं कि नहीं? व्यभिचार का मामला कितना गुरुतर होता जा रहा है। विवाह को भी धर्म का जामा पहनाया जा रहा है। आपके ज़माने में तो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तीनों में परस्पर रोटी बेटी व्यवहार होता था, शूद्रों तक की कन्या वैश्य विवाहते थे। अब बिचारे वैश्य, वैश्यों में रोटी बेटी व्यवहार नहीं कर रहे हैं। दूसरे धर्म वालों ने सामाजिक नियमों में इतना सुधार कर लिया कि करोड़ों की सख्या में हो गये, और आपके जैनी भाइयों ने सामाजिक नियम इतने कठोर बनाये, जिससे लोप होने का समय आ उपस्थित हुआ! सामाजिक नियम भी आपके नाम पर ही बनाये जाते हैं, क्या आपको नहीं मालूम? यह सब अत्याचार आपके नाम पर हो तो ये लोग कर रहे हैं।

बाल-वृद्ध विवाह—जैन विवाह विधि से कराये जाते हैं, आपको वेदी पर बिठला कर, कुछ चीज़ों का हवन किया जाता है, बस आपकी आँखों के साम्हने हवन का धुआँ पहुंचा, कुछ आपके नेत्र मुंदे और इन्होंने झट से ६० वर्ष के देव के ऊपर १० वर्षीय बालिका की बलि दे दी, इस बलि का नाम जैन विवाह! हाय! प्रभो, यह दृश्य तो आप ही जैसे पक्के कलेजे वाले ही देख सकते हैं, या बिना कलेजे के इसे देख, चुपकी साध सकते हैं।

कुछ दिन बाद बुड्ढे देव के स्वर्गारोहण कर जाने के बाद वही 'बलि' जो आपकी आँखों में धुआँ भर कर चढ़ाई गई थी, व्यभिचार में रत होती है। सुधार का

मार्ग उसके साम्हने नहीं, प्रायश्चित उसका होता नहीं, जबरदस्ती जाति पांति से हाथ धो बैठती है। क्या आपने ऐसा ही उपदेश दिया था ? प्रभो! आपके धर्म में स्त्रियों का इतना अपमान, इतना अत्याचार, इतना कड़ा वर्ताव, खैर शिकायत का मौका न आता जो आपके सेक्रेटरी, मैनेजर अथवा ये कार्यकर्ता, पुरुषों का भी इतनी ही कैद रख देते, उन्हें भी एक ही शादी करने की उच्च आज्ञा देते, उनकी शुद्धि का भी मृतलोक मे स्थान न रखते, घर में दो पैसे की मिठाई लाकर लड़के को १।। पैसे की और लड़की को एक धेले की (मैं यह भी अधिक कह गया) भी न देना, कहाँ तक उपयुक्त कहा जा सकता है।

देखिये, जरा इधर भी आप एक दृष्टि पसारिये, अनन्त दर्शी प्रभो देखिये, यह जैनी वैश्य अपने मृतक भाई की तेरही खा रहे है, क्या क्या व्यजंन उदर देव के लिये अर्पण कर रहे है। ये वही जैनी हैं जो मदिरों मे आपके लिये मिठाई के स्थान मे सवा रत्ती नारियल की गरी दिया करते है, कैसे पेट पर हाथ फेरकर मृतक के घर की शुद्धि (सफाई) कर रहे है, मृतक के घर वालो का शोक मिटाने के लिए कैसा उदर पूजा का मार्ग ढूँढ़ निकाला, कोई कोई गरीबों को तो मरा भूल जाता है, पर उसकी तिरही का कर्जा जिदगी भर सताता है, सुनो प्रभु जी, यह सब आपके नाम पर ही होता है। इतना दस्तूर न किया जावे, तो मुखिया लोग आपके जैन धर्म को पालने न देवें। जाति और मदिर बन्द कर देवे।

आज हम आपके धर्म के लिये परस्पर में लडते हैं, धर्म तो आपका है, हम परस्पर में लडते हैं। धर्म हम से भागकर आपके पास चला जारहा है, 'न धर्मो धार्मिकैर्विना' धर्म; आप का आश्रय चाहता है, हम सत्य से विमुख होते जा रहे हैं, हम दिगम्बर, श्वेताम्बर नाम धरा धराकर एक दूसरे की जान ले रहे हैं और इसे भी धर्म समझते हैं। आप तो यह दृश्य शिखरजी, गिरनारजी, केशरियाजी की शिखरों पर बैठे बैठे देखते ही होंगे, आपके सामने ही तो करते हैं।

मन्दिरों की सख्या दिनो दिन बढ़ती जा रही है, प्रतिदिन मूर्तियाँ आपकी गढ़ी जा रही हैं, आपको हथौडा छेनी से ठोक ठोक कर पंच संस्कार करने के लिये राजी किया जाता है, आप चार चार बच्चे और स्त्रियों वाले गृहस्थाचार्यों के मन्त्रों से जिस समय जकड़ दिये जाते हैं, उस समय जैसे वे कहें आप करने लगते हैं, आप चट से एक मन्त्र की फूंक लगते ही नन्हें से बालक बन जाते हैं, आप सुमेरु पर बिठाये जाते हैं और जलक्रीड़ा आपको कराई जाती है, आप बच्चे बनकर यह सब ठाठ देखा करते हैं। इसी तरह मन्त्र की जंजीरों से आपको राजा, भोगी, त्यागी, अर्हन्त, सिद्ध सब कुछ बनना पड़ता है, आपको भी ठिठ कुहार की पड़ती है। आप भी तो रथों में वेदी पर बैठे बैठे सवा महीने का सड़ी मिठाई की खुशबू लेते होंगे। आपको भी तो अब जितने रथों में बैठे हैं उनसे कई गुणे रथ बनवाकर इन जैन, वैश्य भिघर्ड वालों के लिये भेजना पड़ेंगे, जिनमें बैठकर ये निरक्षर पैसाचार्य स्वर्ग सिधार सकेंगे; आप

रहे किस भरोसे हैं; एक के दो न देना पड़े तो हमसे कहिये।

प्रभो, कहना तो बहुत है, पर देखूँ इसका जबाब आप क्या देते हैं, आप हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान देते हैं, ऐसा हमें मालूम हो जावे तो हम आकाश पाताल एक कर डालें।

अनन्त ज्ञानी-प्रभो! हमें बतलाइये, हमारा सुधार कैसे होगा? हमसे आप नाराज हैं या खुश? हमारी सेवाएँ आपके पास तक पहुँचती हैं या नहीं? हमारी धार्मिकता की सुनाई आपके पास तक है या नहीं? हमारी पूजाओं से आप खुश हैं या नहीं? आप हमारी भाषा और संस्कृत की सब पूजाओं का अर्थ समझ जाते हैं या पुजारियों को समझाने के लिये भेजें।

अनन्तदर्शी प्रभो! हमारी दशा आप देख रहे हैं या नहीं? हमारी धार्मिक लीलाएँ आपको तो सब दिख रही होंगी, हमारा बाहरी भीतरी सब धर्म आपको दिखता ही होगा, आप तो यह रोज देखते होंगे कि, धनवान कैसे भोगी-रोगी-शोकी और निरक्षराचार्य होते जा रहे हैं। पंच कैसे पापकर्ता और पक्षपाती हो रहे हैं, विद्वानों की कैसी मिट्टी पलीत है। बिचारे धनिकों को प्रसन्न करने के लिये धर्म और लाज शर्म भी बेच डालते हैं। टका के लिए सवा गज की जीभ से धनवानों की देह पोंछा करते हैं। सच्ची बातें कहते दम घुटा जाता है। रोटियों का सवाल तो आपको साफ दिख रहा होगा।

अनंतसुखी भगवन्, जितने आप सुखी, उतने से कुछ अधिक हम दुखी है, क्या कुछ प्रबन्ध हो सकता है कि थोड़ासा हिस्सा आपसे बटा सकें ? हम तो आपसे रोज कहा करते हैं कि, आपकी बन्दना हम आपके गुणों की प्राप्ति के लिए करते हैं, पर आप उसे नहीं सुनते; इसका क्या कारण ? हमारे दुखों का नाश आप क्यों नहीं कर रहे है ? क्या आप ही सब सुखों के ठेकेदार हैं ? यदि ऐसा हो तो बाबा दूर ही से नमस्कार, नहीं तो फिर मार्ग बतलाइये ।

अनन्तबली प्रभो, क्या आपकी सारी शक्ति आपके ही काम की है ? हम अशक्तों के लिये वह काम न पड़ सकेगी ? अनन्त है, तो फिर लुटा क्यों नही देते ? उसका अन्त तो होता ही नहीं है, कमी आपको होगी नहीं, यहाँ सारी दुनियाँ में शक्ति का समुद्र लहराने लगेगा, तब अब कृपणता काहे की ? क्या आपकी अनन्त शक्ति हमें जन्म भर अशक्त बनाकर रुलावेगी ? हम क्या जगह जगह ठुकराये जाकर प्राण मोचन करेंगे ? प्रभो, ऐसा न हो, आप हमें शक्ति दीजिए; हम आपके किसी एक गुण का अवलम्ब लेकर ही शक्तिशाली बनकर, सच्चे वीर, निर्भय बनकर, आपके पवित्र धर्म का पालन करने लग जावे, ऐसा उपदेश दीजिये, हमें मार्ग बतलाइये, हम कैसे आपके धर्म की दुनियाँ मे रक्षा कर सके ?

आपका उत्तराभिलाषी

दास—

लोकमणि जैन

वीर प्रभु का सन्देश।

[पत्र रूप मे]

प्यारे जैन धर्मधारियो; सावधान! तुम्हारा पतन बड़ी तेजी से हो रहा है! इसका कारण सिर्फ यही है कि, तुमने स्वार्थ के वशीभूत हो जैन धर्म के असली सिद्धान्तो का खून किया, तुमने धर्मवृक्ष के नीचे बैठ; घोर पाप करना शुरू कर दिया, अहिंसा का परदा आगे लगा; हिंसा का नाटक तुमने खेलना प्रारम्भ कर दिया। तुमने धर्म के अंगों को तोड़ मरोड़कर; स्वार्थ के सांचे में ढालकर; सौन्दर्य हीन और नीरस बना डाला है। तुम सत्य से भय खाते हो; प्रेम-हीन; नीरस हृदयों से; पापपङ्क से सने हुए मन से हमारी उपासना करते हो, हमारी उपासना मे भी तुमने दम्भ और कपट का साम्राज्य मचा रक्खा है। तुम जैन धर्म के अमूल्य सिद्धान्तों से आत्मा को सदैव बचाने की कोशिश करते हो, आत्म-धर्म को तुमने स्वार्थमय धर्म बना रक्खा है। तुम्हारी भक्ति, तुम्हारा व्यवहार, तुम्हारा उठना-बैठना, खाना पीना, बोलना चालना, सब भाव शून्य, सत्यरहित और मायावी सिद्ध हो चुका है। यही कारण है कि तुम्हारे संगम से विश्वम्भर का प्यारा धर्म आज थोड़े से वैश्यों की तराजुओं पर तोला जा रहा है! टके सेर बहाया जा रहा है!

तुम चाहते तो जैन धर्म के एक एक सिद्धान्त से ही दुनियाँ को जैनी बना डालते, दुनियाँ के सब ही धर्म इस

धर्म में समावेश होकर अपना स्वत्व खो बैठते, जैन धर्म ही सार्व-धर्म हो जाता। यदि तुम जैन दृष्टि से प्राणियों को देखते तो सबही प्राणी तुम्हें मित्र मालूम पड़ते, कोई तुम्हें शत्रु दिखता ही नहीं। "सत्वेषुमैत्री" की भावना क्या इसलिए तुम्हें बतलाई थी कि, तुम दुनियाँ के प्राणियों से प्रेम का नाता तोड़ बैठोगे। अपने शास्त्र विधर्मियों को न छूने दोगे। मन्दिरों मे वीतराग की दिव्य छवि न देखने दोगे। तुम सत्य को छुपाकर प्राणिमात्र से दया हीन असत्य वर्ताव करने लग जाओगे। सबको मित्र समझने वाला जैन धर्म कितनी बुरी तरह से आज भारत में दिन व्यतीत कर रहा है। तुम्हारा ही कुछ सहारा हो, सो भी नहीं, तुम कुछ करते हो, जैन धर्म कुछ चाहता है, वह हिंसा छुड़ाता है, झूठ छुड़ाता है, चोरी नहीं करने देता, व्यभिचार से रोकता है, लोभी न बनने का आग्रह करता है, तुम उसकी एक भी नहीं सुनते, तुम हिंसा करते हो, बड़े से बड़े जीवों का बध करते हो, एकदम गला काटकर नहीं, पर तड़फा तड़फा कर नोच नोच कर, बुरी तरह से प्राण लेते हो। तुम सिर से पैर तक झूठे होते जाते हो, चोरी करना तुमने अपना कर्म समझ लिया है, तुम खुद अपने आत्मा की चोरी करते हो, व्यभिचार मे मग्न रहते हो, खूब विषय भोगों को करने दिन रात परदारा के प्रेम में पागल रहते हो, तुमने गृहस्थ जीवन को रतिगृह बना रक्खा है, खूब निकम्मे बच्चे पैदा करते हो। और धर्म की दुहाई देते हो। दिन रात पैसा पैदा करनेकी धुनि तुम्हे सवार रहती है, शान्तिपूर्वक कभी भी आत्म चितवन नहीं करते।

त्याग धर्म को तुम त्याग चुके हो, तुम्हारा त्याग विलक्षण है। तुम हरी त्यागकर सूखी खाते! एक की हिंसा बचाने के बदले अनेकों का नाश कर डालते हो। फिर भी धर्मशास्त्र को गवाही में पेश कर देते हो। तुमसे झूठ छोड़ने को कहा जाता है, तुम सत्य छोड़ बैठते हो, सारे त्याग तुम्हारे इसी तरह के हैं। तुम्हें संसार के प्राणिमात्र से प्रेम करने को कहा जाता है, तो तुम संसार को शत्रु बना डालते हो! तुम्हें संख्या बढ़ाने का, सहधर्मी अधिक बनाने के लिये संकेत किया जाता है, तो तुम अपने ही भाइयों को कान पकड़ पकड़ कर धर्म का सहारा छुड़वाते जा रहे हो। तुम अपने हाथों अपने सहधर्मियों की संख्या घटाते जा रहे हो।

तुमने सामाजिक नियम ऐसे भद्दे और खराब बना रक्खे हैं, जिनसे तुम्हारी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का नाश होता जा रहा है। तुम्हारे मन पवित्र नहीं हैं, तुम्हारे शरीर कमजोर हैं, तुम्हारी आत्मा विश्वासहीन हो गई है, विश्वासहीन व्यक्ति संसार में सुखी नहीं रह सकता, कम से कम तुम्हें अपने ऊपर भी विश्वास होता तो आज तुम शक्तिशाली और अच्छे धार्मिक नजर आते। तुमने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया, चाहिए था कि तुम उसे थोड़ासा भोगकर विराग सीखो, रागियों को विराग सिखाने के लिये पत्नी, पुत्र, धन, धान्यादि चीजों का संसर्ग था; न कि उसमें मस्त रहकर समस्त पापों का सिर चढ़ाना और शरीर तथा सद्भावों का एकदम नाश कर डालना। तुम गृहस्थाश्रम में

इसलिये प्रवेश हुए थे कि, एक आदि वीर पैदा कर संसार में वीर पुत्रों को छोड़कर तुम आत्मकल्याण के मार्ग पर लग जाते। तुमने क्या किया? केले की गहर (घोर) जैसे दर्जन सवा दर्जन लड़के बच्चे पैदा कर डाले, अपना शरीर नाशकर पत्नी को २५ वर्ष की उमर में बुड्ढी बना डाली और बच्चों को चूहे के बच्चों जैसे मर मिटने के लिये अथवा जमीन पर सबकी सब कुछ सहने के लिये छोड दिये।

गृहस्थाश्रम अखाडा था, तुम चाहते तो संसार पर विजय पाने के लिये सारी शक्तियाँ जुटा डालते। धर्म के सारे अङ्गों की परीक्षा कर डालते, मोक्ष जाने का मार्ग ढूढ़ निकालते और एकदम सारे संसार से नाता तोड आत्मस्वरूप में लीन हो जाते। भरत चक्रवर्ती ने गृहस्थाश्रम में ही मोक्ष की सामग्रियाँ उपस्थित कर ली थीं; जब सब शक्तियों का विकाश कर लिया था तब ही बाह्यवस्त्र त्याग आत्मदर्शी होकर, स्वतन्त्र हो गये थे।

तुम जैन धर्म सरीखा सरल तथा सत्य धर्म कहाँ पावोगे? तुम्हारी प्रत्येक आत्मशक्ति की कदर करने वाला, तुम्हारी समस्त भावनाओं का रत्ती रत्ती हिसाब रखने वाला ऐसा साहूकार तुम्हें कहाँ मिलेगा? हाँ तुम्हारी इन थोथी पूजाओं से तुम्हारा प्रभु प्रसन्न नहीं होता, तुम्हारे झूठे काँसे के मजीरों की आवाज उसके कानों को नहीं हिला सकता, तुम्हारी बगुला-भक्ति उसे अपनी ओर नहीं खींच सकती, तुम्हारे ये स्वार्थी मन्त्र वीतराग को कीलित नहीं कर सकते।

पर जहाँ सच्ची भक्ति और सच्ची उपासनाएँ प्राणियों की पाई हैं, उन पर जिनेन्द्र ने ध्यान दिया है, सच्चे को कई पाप करते हुए भी शुभगति मिली है, मेंडकों तक को स्वर्ग के सिंहासन पल मात्र में प्राप्त हुए हैं, चोर, चाँडाल, वानर, शूकर बिना किसी भेद भाव के केवल सच्चे आत्मविश्वासी होने के कारण सद्गति के पात्र बनाये गये हैं, सत्य की कदर करने वाला झूठ से हजारों कोस दूर रहने वाला जिन धर्म है। जो सत्य से डरता है वह जैन धर्म से डरने वाला है।

प्यारे; नाम मात्र के जैनियो! अब तुम्हें क्या करना चाहिये? तुम्हें सारी शक्ति लगाकर अपना क्षेत्र बढ़ाना चाहिये, करोड़ों की तादाद में जैनी बनाना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्र सबको ही इस धर्म में स्थान दान दो. यदि मुसलमान ईसाई आदि भी तुम्हारे धर्म में आना चाहें तो बड़ी खुशी से उन्हें जैन धर्म की पवित्र दीक्षा दो, किसी भी जाति का, किसी भी धर्म का स्त्री या पुरुष, चाहे जो हो जैनी बना डालो, जैन धर्म के ऊपर विश्वास मात्र रखने वाले भी सद्गति के पात्र होते हैं। विश्वास की दृढ़ता ही मोक्ष प्रदायिनी बूटी है। जैनी तो जब पशु भी हो सकते हैं और उनका निर्वाह जैन धर्म में हो सकता है, तब दुनियाँ के मनुष्य मात्र को जैन धर्म में निर्वाह की कमी नहीं रह सकती, प्रत्येक मनुष्य का निर्वाह जैन धर्म में सरलतापूर्वक हो सकता है। तुम्हें जो जिस भाषा का जानकार हो उस ही भाषा में उन्हीं के सांचे में जैन धर्म की उन्हें पवित्र शिक्षा दो। दुनियाँ से मित्रता स्थापित करो। जिस

समय सारी दुनियाँ को तुम मित्रों से भरपूर देखोगे उस समय तुम्हारी छाती फूलकर आमोद में मस्त हो जावेगी। तुम्हारे हर्ष का पारावार न रहेगा। इसी आनन्द का आस्वादन कराने के लिये जैन धर्म सबसे प्रथम "सत्वेषु मैत्री" का पाठ सिखलाता है। तुम अपने सामाजिक नियम इतने सरल और सादे बनाओ, जिससे गरीब-अमीर सबही आसानी से अपना जीवन व्यतीत कर सके। अत्यन्त बड़ाई से नाश होने का प्रति समय भय रहता है। नियमों की सरलता ही उसे **सार्व धर्म** बना सकेगी।

दूसरे तुम्हें विद्या और विद्वानों की कमी की शीघ्र पूर्ति कर डालना चाहिये-तुम जब तक अच्छे विद्वान तैयार नहीं करोगे तब तक जैन धर्म के अमूल्य रत्न कैसे दुनियाँ के जौहरियों को दिखलाकर मुग्ध कर सकोगे? जैन धर्म को विद्वान ही संसार में टिका सकेंगे।

धर्म के नाम पर खर्च होने वाले पैसे को एक दम बंद करके उस पैसे को एक नहीं; अनेकों विद्या भवन स्थापित करने में खर्च कर डालो। नये मन्दिर, नई प्रतिमाएं, नवीन रथ इनको एकदम करना कराना बंद करदो। जितनी तुम्हें ये चीजें उपलब्ध हैं, उन्हीं की सम्हाल करो। और इनमें खर्च करने वाले धन को ज्ञानी बनने बनाने के आयतनों में दे डालो। ये काम फौरन से पेश्तर कर डालो। गुणवानों को बढ़ने का मौका दो। उन्हें मान दो। सन्मान दो। प्रेम से उनके गुणों को गृहण करो।

यही **"गुणिषु प्रमोदं"**, का दूसरा पाठ जैन धर्म तुम्हारे साम्हने रखता है।

तुम अपनी नीच वासनाओं का परिहार करो। प्रत्येक कार्यों में दंभ, मायाचारी करना मनुष्य का धर्म नहीं है। तुम्हें इस धर्म के नीचे रहने के लिये अपने को दया का भंडार बनना पड़ेगा। दुखियो के दुख से तुम्हें आहें भरना पड़ेगी। तुम्हें दुखियों की तन, मन, धन से सहायता करना पड़ेगी। जिस समय देसवासी दुखी होंगे; उस समय तुम्हें सारा धन, सारी शक्ति अपने दुखी भाइयों की सेवा मे अर्पण कर देना पड़ेगी। तुम्हें फिर सहधर्मी और विधर्मी का भेद न रखना होगा। दया के पात्र सबही क्लिष्ट जीव है। तुम्हारे हृदय जिस समय दया से रस मय हो जावेंगे, उस समय तुम अपने को शान्ति निकेतन मे बैठ सुधारस का पान करते पावोगे। तुम्हारे चारों ओर शान्ति का साम्राज्य और आनन्द का खजाना नजर आवेगा। तुम दुनियाँ भर के प्यारे होकर; जैन धर्म का विकाश कर सकोगे। इसी को जैन धर्म मे **'क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वं,'** नाम की तीसरी भावना बतलाई है।

तुम्हें तुम्हारे शत्रु नीचा दिखाने की कोशिश में रहें। तुम्हें व्यर्थ ही भला बुरा कहें। उस समय भी यदि तुम बिना खोटे व्यवहार के उनकी शत्रुता मिटा सको तो उत्तम है। याने जहाँ तक हो सके किसी के साथ भी क्रूरता का वर्ताव नहीं करो। वे तुम्हारे साम्य व्यवहार

से स्वयं ही तुम्हारे मित्र बन जावेंगे। इसका नाम **'माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ,'** नाम की चौथी भावना है। ये सर्व ही भावनाएँ तुम्हारे नीरस हृदय मे रस का संचार करने वाली तुम्हें पूर्ण सुखी बनाने वाली हैं।

तुम सारी बगुलावृत्ति को छोड़कर परमात्मा की उपासना करो। स्वार्थ का चश्मा लगाकर; परमात्मा को तरफ देखोगे; तो वह तुम्हें चश्मा के काँच का रंग सरीखा दीखेगा। असली स्वरूप परमात्मा का न देख सकोगे। फिर तुम्हारी फर्याद, पूजा, भावना सुनेगा कौन? बड़ी लम्बी चौड़ी उपासना न कर सको तो थोड़ी सी करो, पर वह अपना कर्त्तव्य समझकर करो। स्वार्थ की गन्ध उसमें बिलकुल न हो। निरपेक्ष भक्ति से ही तुम आत्मा तथा परमात्मा का स्वरूप प्राप्त कर सकोगे। परमात्मा के अगाध गुण तब ही तुम देख सकोगे। अन्यथा जहाँ पर तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध न होगा; तुम वहीं पर परमात्मा को कोसने लग जावोगे, उससे बुराई कर बैठोगे, उसको ताने देने मे भी न चूकोगे। तुम अपनी भक्ति के बदले कुछ मत मांगो, मांगना भिखारियों का काम है। तुम्हें भिक्षावृत्ति छोड़ देना चाहिये। 'मागे मिले न भीख, बिन माँगे मोती मिलें'। इस कहावत पर विश्वास रक्खो। सच्ची उपासना मोक्ष का सोपान है। तुम्हारे हृदय में जिस समय सच्ची भक्ति का सञ्चार होगा, उस समय तुम्हें तुम्हारा प्रभु; सबसे बडा, सबसे अच्छा, महादानी,

महाज्ञानी, महावीर नजर आवेगा। तुम्हारे प्रत्येक कार्य में तुम्हें आश्रय देने वाला प्रतीत होगा। पाप नहीं करने देगा। परतंत्रता से सदा के लिये मुक्त कर देने में हाथ बटावेगा। सच्ची ईश्वर की भक्ति तुम्हें परमात्मा के गुणाकर्षण की शक्ति प्रदान करेगी, तुम्हें महलों की क्या बात जङ्गल और झोपड़ियों में भी परमानन्द का अनुभव होगा। तुम्हारी सारी अकर्मण्यता नष्ट होकर वीरत्व प्रगट होगा।

धर्म; धर्म समझकर करो, आत्मा का गुण समझकर करो। धन से धर्म मत खरीदो, पैसे के पुजारी से तुम पुण्य नहीं छीन सकोगे। धर्म के स्थान में धन हाथ नहीं बटावेगा, धर्म मोल नहीं मिलता; वह अमूल्य है। सब धन उसके सामने धूल है। धर्म का आदर तुम सोने चाँदी के रथों से, काठ के घोडों से, सोने चाँदी के छत्र चॅवरों से न कर सकोगे। तुम्हें अपना आत्मा को पाप कार्यों से रहित; त्याग भाव की ओर लगाना होगा। आत्मा के गुणोंका विकाश करना होगा, तब ही तुम्हारी दशा सुधर सकेगी।

हमारा अन्तिम संदेश यही है कि तुम दुनिया के सबही प्राणियों से मित्रता करो, सब को जैनी बनाओ सामाजिक नियम सादे और सरल बना डालो, सत्य की खोज करो, सत्य में धर्म और उसी में तुम्हारी सारी भलाइयां घुसी हुई हैं।

तुम्हारा अकारण-बंधु—

[भगवान] महावीर ।

हावीर वाणी

जो पथिक बड़े लम्बे मार्ग की यात्रा पर अपने साथ पाथेय लेकर जाता है, वह आगे जाता हुआ भूख और प्यास से जरा भी पीड़ित न होकर अत्यन्त सुखी होता है।

卐

सम्पादक
पं. बेचरदास जी दोशी.